उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध में हिन्दी कथा साहित्य में एलजीबीटीक्यूजन के विविध आयाम को जानने-समझने की कोशिश हुई है। एलजीबीटीक्यू से आशय लेस्बियन, गे, बाईसेक्शुअल, ट्रांसजेंडर तथा क्वीयर से है। यह एक आम सामाजिक धारणा है कि यौन आकर्षण पुरुष जेंडर व्यक्ति एवं स्त्री जेंडर व्यक्ति के बीच होता है जिसे हम विषमलैंगिकता के नाम से जानते हैं। समान लिंग के प्रति भी आकर्षण होता है/हो सकता है, इसे प्रायः समाज का मुख्यधारा स्वीकार नहीं करना चाहता। एक स्त्री निर्धारित व्यक्ति की पहचान जेंडर के आधार पर स्त्रीत्व या पुरुषत्व एवं यौन अभिविन्यास के आधार पर विषमलैंगिक, द्विलैंगिक (बाईसेक्शुअल), समलैंगिक के बीच कुछ भी हो सकता है। दूसरी तरफ स्वयं को 'गे' बताने वाला व्यक्ति जेंडर के आधार पर स्त्रीत्व या पुरुषत्व जैसा कुछ भी व्यवहार कर सकता है। स्त्री या पुरुष एवं विषमलैंगिक या समलैंगिक के अलावा यौन अभिविन्यास तथा जेंडर पहचान के कई प्रकार होते हैं और हो सकते हैं। अगर व्यापकता से देखा जाए तो जेंडर और यौनिकता की बहस महज एलजीबीटीक्यू पहचानों की बात तक सीमित नहीं है बल्कि यह उन तमाम स्त्रियों और पुरुषों की भी वकालत करता है जिन्हें जेंडर की बनी बनायी धारणा ने सहज और खुद को खुद जैसा बनने से वंचित रखा हैं। उन स्त्रियों की बात करता है जिन्हें जेंडर के नाम पर भेद-भाव को भोगना पड़ा। अक्सर भिन्न पहचान वाले व्यक्तियों को तथाकथित सामाजिक जेंडर-यौनिकता के मानकों में फिट न हो पाने के कारण सार्वजनिक चर्चा के केंद्र से बाहर कर दिया जाता है।

'समलैंगिक' शब्द का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में तब हुआ जब इस पर व्यापकता से विचार-विमर्श किया जाने लगा। इसका यह कत्तई अर्थ नहीं कि पूर्व में इसका अस्तित्व न रहा हो। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व समलैंगिक संबंधों को 'मानसिक बीमारी' और 'अप्राकृतिक' माना जाता था। होमोफोबिया

(समलैंगिकता के प्रति घृणा) पश्चिमी देन है, जो न सिर्फ भारत में अपितु विकासशील तीसरी दुनिया में उपनिवेशवाद के माध्यम से प्रसारित हुई। यह विदित है कि समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी में डालने तथा उसे अप्राकृतिक घोषित करने का काम अंग्रेजी शासन ने किया। जिसका प्रभाव दुनिया के अन्य देशों सहित भारत पर भी देखा जा सकता है। अंग्रेजी शासन ने स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता के नाम पर व्यक्तिगत भिन्नता का गला घोंट दिया। बकौल जॉन स्टुअर्ट मिल- "अन्य आधुनिक लोगों कि अपेक्षा अंग्रेज लोग प्रकृति की अवस्था से अधिक दूर हैं। वे अन्य लोगों कि अपेक्षा सभ्य व अनुशासन की उपज ज्यादा हैं। इंग्लैंड ऐसा देश है जहां सामाजिक अनुशासन सर्वाधिक सफल रहा है, उसे जीतने में नहीं जिसके साथ इसका विवाद रहा हो, बल्कि उसे दबाने में। अन्य लोगों की अपेक्षा अंग्रेज लोग नियमानुसार कार्य ही नहीं करते बल्कि वैसा महसूस भी करते है। दूसरे देशों में सिखाया हुआ मत या समाज की आवश्यकता दृढ़ ताकत हो सकती है लेकिन व्यक्तिगत स्वभाव के लक्षण इसके तहत भी दिखाई दे जाते हैं, प्रायः सामाजिक मत का विरोध करते हुए ही नजर आते हैं। सामाजिक नियम स्वभाव से अधिक ताकतवर हो सकता है लेकिन स्वभाव फिर भी मौजूद रहता है। इंग्लैंड में, बहुत हद तक नियम ने स्वभाव की जगह ले ली है"[1]।

पश्चिम में एलजीबीटीक्यू समुदाय के विकास में 'स्टोन्वॉल मूवमेंट' की ऐतिहासिक भूमिका है। भारत में पहली बार समान लिंग के प्रति आकर्षण या प्रेम भाव अथवा प्रेम आलाप को सन् 1870 में तत्कालीन अंग्रेजी शासकों द्वारा अपराध की श्रेणी में रखा गया। इससे पूर्व समलैंगिक संबंधों को अपराध की दृष्टि से देखने की रवायत नहीं थी जिसके अंतर्गत सहमति के आधार पर भी बने समलैंगिक संबंधों के लिए दस वर्ष तक की उम्र कैद की सजा का प्रावधान बनाया गया था। भारतीय दंड संहिता की धारा 377 सन् 1870 में अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपा गया कानून है। धारा 377 की खिलाफत भारत में सबसे पहले ABVA (एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन) ने सन् 1994 में की। इसके बाद सन् 1998 में लेस्बियन संबंध उभरकर सामने आये जिसका मूल कारण 'फायर' फिल्म थी। और अंततः 15 अप्रैल 2014 को किन्नरों

और ट्रांसजेंडर को 'थर्ड जेंडर' तथा 6 सितंबर 2018 समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से हटा दिया गया। क्वीयरजन ने समाजसेवा, फैशन, राजनीति, संगीत, नृत्य व अन्य क्षेत्रों में अपना लोहा मनवाया हैं।

प्राचीन समय में स्त्री-स्त्री या पुरुष-पुरुष के बीच प्रेम और संवेग की व्याख्या आज की व्याख्या से अलग है। प्राचीन साहित्य में विभिन्न प्रकार के यौनिक संबंधों का चित्रण हुआ है। कहीं यह चित्रण चंचल रूप में दिखाई देता है तो कही संवेगिक रूप में। वहां प्रेम और आपसी आकर्षण तो दिखाई देता है पर सीधे-सीधे शारीरिक या यौनिक सम्बन्ध की व्याख्या नहीं दिखाई देती। जब ब्रिटिश का आगमन होता है भारत में तो वो इस यौनिक वैविध्यता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। अतः यह कहना गलत होगा कि साहित्य में समलैंगिक संबंधों का चित्रण नहीं था या दिखाई नहीं देता। वे एक-दूसरे से प्रेम तो करते थे पर गे या लेस्बियन जैसे शब्दों से अवगत नहीं थे।

सिनेमा में एलजीबीटीक्यू पर बनी कुछ फिल्में उनके व्यक्तित्व के किसी एक पक्ष को दिखती हैं, कुछ उन्हें हास्यास्पद रूप में दिखती है तो कुछ ऐसी फिल्में भी बनी है जिन्होंने एलजीबीटीक्यू संबंधों व उनकी जटिलताओं को समझने तथा समाज में प्रवेश कर गयी भ्रमित धारणाओं को तोड़ने का प्रयास किया है। दिपा मेहता के निर्देशन में बनी फिल्म फायर(1996) जहां राधा और सीता (देवरानी-जेठानी) के संबंधों के माध्यम से समलैंगिक मुद्दे को उठाती है। कल्पना लाजमी के निर्देशन में बनी फिल्म 'दरमियान'(1997) एक किन्नर बच्चे के पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष की कहानी है। वहीं हंसल मेहता के निर्देशन में बनी फिल्म 'अलीगढ़' (2016) सच्ची घटना पर आधारित है। यह फिल्म प्रो. श्रीनिवास रामचन्द्र सिरस के जीवन से संबंधित है। फिल्म समलैंगिक व्यक्ति के जीवन के उलझनों तथा संघर्षों को दिखाती है।

हिन्दी में क्वीयर संबंधों पर लिखे गये उपन्यासों व कहानियों में कहीं प्रतीकों, कहीं संकेतों तो कहीं प्रसंगों की चर्चा की गयी है लेकिन यौन-प्रसंगों पर सीधी-सीधी चर्चा बीसवीं सदी के उतरार्द्ध तक दिखाई नहीं देती हैं। बीसवीं सदी के पांचवें दशक में आकर हिन्दी कथा साहित्य में कथ्यगत एवं शिल्पगत नवीनता

पूरी तरह आ गयी थी। कथ्यात्मक विस्तार में केन्द्रीय पात्र की व्यक्तिगत समस्याओं और उनसे जुड़े अपरिहार्य तत्वों का उल्लेख दिखायी देता है। निराला की रचना 'कुल्लीभाट' (1939) में कुल्लीभाट का अपने मित्र निराला के प्रति भावनात्मक तथा रूमानी आकर्षण देखा जा सकता है। 'शेखर एक जीवनी' (1941-44) उपन्यास का शेखर बाईसेक्सुअल है। शेखर को शारदा और शशि के साथ-साथ कुमार के प्रति आकर्षित होते हुए भी देखा जा सकता है। 'अज्ञेय' द्वारा रचित उपन्यास 'नदी के द्वीप' (1951) का हेमेन्द्र, उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास 'शहर में घूमता आईना' (1963) का चेतन, राजकमल चौधरी के बहुचर्चित उपन्यास 'मछली मरी हुई' (1966) की शीरी, अमृतलाल नागर के उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल'(1978) की अम्मा (बाईसेक्सुअल) तथा बैंड मास्टर कप्तान जैक्सन (समलैंगिक), शुभा वर्मा के उपन्यास 'अनाम रिश्तों के नाम' (1985) की सब्रीना, केवल सूद द्वारा रचित उपन्यास 'मुर्गीखाना'(1987) की शीला, सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए'(1993) की दिव्या कत्याल, मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी'((1994) का केन्द्रीय चरित्र हरिहर दत्त तिवारी उर्फ हरिया हरक्युलिज के पिता राय साहब गिरवाण दत्त तिवारी और 'हमजाद' (1996) उपन्यास में जेन्डर और सेक्सुअलिटी से जुड़ी बनी बनायी मान्यताओं से भिन्न विभिन्न पात्र, प्रभा खेतान के उपन्यास 'पीली आंधी' (1996) का गौतम, गीतांजलि श्री के उपन्यास 'तिरोहित' (2001) में ललना और चच्चो की अद्भुत मित्रता, नीरजा माधव के उपन्यास 'यमदीप' (2002) में किन्नर के रूप में जन्मी नंदरानी, संजीव के जीवनीपरक उपन्यास 'सूत्रधार' (2003) में 'चाँदी सिंह' किन्नर थे। अनीता राकेश द्वारा लिखित उपन्यास 'गुरुकुल' (2008) में एलजीबीटीक्यू पर होने वाली चर्चा, वनमाली कथा सम्मान 2011 से सम्मानित मनोज रूपड़ा के उपन्यास 'प्रतिसंसार' (2008) में किन्नर का जिक्र, पंकज बिष्ट के उपन्यास 'पंखवाली नाव' (2009) में समलैंगिकता के विषय को उठाया गया है। जिसके केंद्र में 'गे' की चर्चा प्रमुखता से है। 'गे'के मार्फत ही 'लेस्बियन' तथा 'ट्रांससेक्सुअल' संबंधों पर भी हल्की-फुल्की चर्चा होती है। गीतांजलि चटर्जी के उपन्यास 'तीसरे लोग' (2010) का चरित्र डॉ. स्मारक होमोसेक्सुअल 'गे' है प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' (2011) उपन्यास

का प्रतिपाद्य विषय वे लोग, वे समूह व समुदाय हैं जिन्हें हाशिये का जीवन जीने के लिए विवश किया गया जिन्हें 'तीसरी श्रेणी', 'तीसरे जेंडर', 'तीसरी ताली' में शामिल किया गया। साथ ही लेखक समलैंगिक पहचानों पर भी अपनी कलम चलाते दिखाई देते हैं। महेंद्र भीष्म का उपन्यास 'किन्नर कथा' (2016) किन्नर जीवन पर आधारित है। निर्मला भुराड़िया के उपन्यास 'गुलाम मंडी'(2016) में किन्नरों की जीवन-गाथा, भगवंत अनमोल के उपन्यास 'ज़िंदगी 50-50' (2017) का केन्द्रीय विषय 'किन्नर जीवन' से जुड़ा है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' (2017) में 'किन्नर जीवन की व्यवहारिकता को व्यवहारिक घटनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है। गिरिजा भारती के उपन्यास 'अस्तित्व' (2018) की पात्र प्रीत का जन्म किन्नर के रूप में होता है, उपन्यासकार सुभाष अखिल का उपन्यास 'दरमियाना' (2018) तारा, रेशमा, संध्या, सुनंदा, रेखा और दया नामक किन्नरों के संघर्षात्मक जीवन की कहानी है। तथा रूथ वनिता का प्रथम उपन्यास 'परियों के बीच' (2021) पूर्व-औपनिवेशिक काल में शायरा नफ़ीस बाई और मशहूर तवायफ़ चपला बाई के बीच के प्रेम को अभिव्यक्त करता है जहां समलैंगिक प्रेम को सामाजिक वर्जना के रूप में नहीं देखा जाता था।

इस्मत चुगताई की कहानी 'लिहाफ़' तथा पंकज सुबीर की कहानी 'अंधेरे का गणित' में समलैंगिकता का उद्भव प्रतिकूल परिस्थितियों, विवशता तथा उपेक्षा के कारण दिखाया गया है। उग्र के 'चाकलेट' कहानी-संग्रह में संकलित आठों कहानियाँ (हे सुकुमार, व्यभिचारी प्यार, जेल में, चाकलेट, पालट, हम फिदाये लखनऊ, कमरिया नागन-सी बलखाय, चाकलेट-चर्चा), इस्मत चुगताई के लिहाफ़, तथा तारिक असलम 'तस्नीम' की कहानी ओवरकोट पिडोफिलिया (किसी भी बच्चे के प्रति यौन रुचि या यौन दुर्व्यवहार करना) पर आधारित है। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' के भुवन तथा गीतांजलि चटर्जी के उपन्यास 'तीसरे लोग' के किसना का एलजीबीटी के रूप में प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता किन्तु भिन्न यौनिकता के कारण उनके वैवाहिक संबंधों (विषमलैंगिक संबंधों) में विच्छेद दिखाई देता है। एक धारा ऐसी

है जिसका मानना है कि पुरुष पुरुष के प्रति इसीलिए आकर्षित होता है क्योंकि वह भीतर से स्वयं को स्त्री मानता है। तथा दूसरी धारा के अनुसार पुरुष का पुरुष के प्रति आकर्षित होना सहज और स्वाभाविक है, यह एक प्रवृति है इसमें स्वयं को स्त्री मानने जैसा कुछ नहीं है।

सामाजिक कार्यकर्ता माया शर्मा और शांति द्वारा लिखित 'भँवरी' की जीवनी (1996) में दो विवाहित स्त्रियों के प्रेम और आकर्षण को देखा जा सकता है। मैत्रेयी पुष्पा के औपन्यासिक आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै'(2002) में मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी और उनकी सहेली गौरा के बीच के अंतरंग संबंधों का ताना-बाना दिखाई देता है। प्रभाकर श्रोत्रिय की नाट्य रचना 'इला'(2009) पौराणिक कथा पर आधारित है। इसमें इला के सुददुम्न बनने अर्थात स्त्री के पुरुष रूप में रूपांतरण की कहानी है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा ... मैं लक्ष्मी' (2015) लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के आत्मसंघर्ष को व्यक्त करती है। 'भूपेन खख्खर : एक अंतरंग संस्मरण'(2020) में भिन्न यौनिकता के कारण अपने अकेलेपन और तड़प से जूझ रहे भूपेन खख्खर के जीवन के कठिन दौर और संघर्षों की चर्चा हुई है।

हम समलैंगिकता ही नहीं बल्कि विषमलैंगिकता के सम्बन्ध में बात करते हुए भी यौनिकता जैसे विषय पर बात करने से कतराते हैं। किसी को देखकर, उसके पहनावे या तौर-तरीके को देखकर न तो उसकी जेंडर पहचान तथा न ही उसकी यौनिकता का निर्धारण किया जा सकता है। जेंडर और यौनिकता से जुड़े मानक पूर्वाग्रह पर आधारित तथा निर्मित है। जेंडर का सम्बन्ध व्यक्तिकता से है। अध्ययन के दौरान जिन लोगों से बातचीत की गई उन्होंने अपनी पहचान बाईसेक्सुअल, गे, लेस्बियन(सिर्फ दो), ट्रांसजेंडर तथा किन्नर बतायी और कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने अपनी कोई निश्चित पहचान कभी नहीं बतायी। इन तमाम लोगों से मिलने, बातचीत करने एवं उनके विचारों तथा हाव-भाव की विभिन्नता से यह बात स्पष्ट हो जाता है कि जेंडर को आप किसी सीमा में नहीं बाँध सकते है। इस अध्ययन के दौरान दो परिप्रेक्ष्य उभरे। पहला यह कि जेंडर और शरीर का महत्वपूर्ण सम्बन्ध है; इनके बीच तालमेल स्थापित करना एक स्वस्थ जीवन

के लिए बेहद आवश्यक है। जिसके लिए एस.आर.एस (Sex Reassignment Surgery) जैसे विकल्पों की मदद ली जाती है। दूसरा जेंडर का अर्थ अपने अंदर अपने आप को महसूस करने के साथ जुड़ा है अतः जन्म से प्राप्त जेंडर के अस्वीकार हेतु शरीर को बदलना हमेशा जरूरी नहीं है।

'मर्द ऊपर-औरत नीचे' जैसे परंपरागत दैहिक रिश्तें की धारणा और जेंडर-यौनिकता जैसे नियमों को तोड़कर जब दो स्त्रियों का दैहिक सम्बन्ध स्थापित होता है, तो क्या कारण है कि वहां भी एक पुरुष और एक स्त्री की भूमिका होती है। दरअसल कुछ लेस्बियन जोड़े जेंडर और यौनिकता के निर्मित नियमों के जाल को तो समझते है परन्तु कई बार खुद इन स्त्री-पुरुष भूमिकाओं के जाल में आकर फँस जाते है और अनजाने ही सही परन्तु इसमें गुथते जाते है। असल में यह लोक-प्रचलित मान्यताओं का प्रभाव है जो सदियों से चलता आया हैं। जहां एक औरत और एक मर्द होता है। गौतम सांयाल रूथ वनिता के पुस्तक 'सेम सेक्स लव इन इंडिया : रीडिंग्स फ्रॉम लिटरेचर एण्ड हिस्ट्री' में उठाए गये मुद्दे का जिक्र करते है- The ancient Indian Law-book, The MANUSMRITI, distinguishes two women, punishing's the later for more severely than the former'. इस संबंध में वह लिखते है कि हैरानी की बात है कि 'लेस्बियन प्रैक्सिस' (अर्थात औरत-औरत यौन संबंध)को गलत बताते हुए भी हमारा पौराणिक दंड-विधाता (मनु महाराज) अपनी 'हेटरोटोपिया' (विषमलैंगिकता की दुर्भावना) से निकल नहीं पाया था"[2]।

समलैंगिकता को पाश्चात्य की देन कहा जाता है। आशीष नंदी ने अपनी पुस्तक 'इंटीमेट एनिमी' में इसकी सत्यता के इतिहास को तार्किकता और बड़े बेबाकी से अभिव्यक्त किया है। वे बताते है कि यह उपनिवेशिकरण का प्रभाव ही है जिसने ऐसे दलीलों को जन्म दिया। दरअसल यह कहना और सोचना ही 'कि समलैंगिकता पाश्चात्य से आई है' पाश्चात्य की देन है। "जाहिर तौर पर कोई भी औपनिवेशिक प्रणाली खुद को टिकाए रखने के लिए सामाजिक-आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पारितोषिकों और दंडों का इस्तेमाल करने के जरिये उपनिवेशितों को नये सामाजिक मूल्य और संज्ञानात्मक श्रेणियाँ स्वीकार करने की तरफ़ ले

जाती है"[3]। "अंग्रेजी राज मानता था कि भारतवासी प्रच्छन्न रूप से असभ्य हैं और उन्हें खुद को कुछ और सभ्य बनाना पड़ेगा। दूसरी तरफ़ अंग्रेजों को दोस्त समझने वाले हों या दुश्मन, बहुत से भारतीय भी खुद को उन्हीं जैसा बना लेने में ही अपनी मुक्ति देखते थे। अंग्रेजों के पास एक युद्धप्रिय नस्ल की विचारधारा थी जिसकी कसौटियों पर फ़िट होने के लिए पौरुष के अतिरेक, प्रकट साहस और बेइंतहा वफ़ादारी का प्रदर्शन एक शर्त थी। इसे पूरा करने के लिए तैयार कई भारतीय जातियाँ और उप-सांस्कृतिक ब्रिटिश मध्यवर्ग में प्रचलित सेक्शुअल स्टीरियोटाइपों की नकल करने लगी थीं"[4]।"इस दौरान चेतना के धरातल पर हुए परिवर्तन को औपनिवेशिक भारत के लिए केन्द्रीय बन चुकी तीन अवधारणाओं के रूप में पेश किया जा सकता है। ये थीं, पुरुषत्व, नारीत्व और क्लीवत्व। पुरुषत्व और नारीत्व के विलोम-युग्म की जगह औपनिवेशिक राजनीतिक संस्कृति में धीरे-धीरे पुरुषत्व और क्लीवत्व के विलोम-युग्म ने ले ली। पुरुषत्व के भीतर नारीत्व की स्थिति को मर्दों की राजनीतिक अस्मिता के परम-निषेध की तरह देखा जाने लगा। इसे नारीत्व से भी ज्यादा खतरनाक रोग की संज्ञा दे दी गई। प्राक्-आधुनिक ईसाइयत समेत कुछ अन्य संस्कृतियों की भांति भारत में भी अच्छे और बुरे उभयलिंगियों के बारे में मिथक प्रचलित थे, और उन्हीं के मुताबिक उभयलैंगिकता को आदरणीय या घृणित समझा जाता था"[5]। "ब्रिटेन में अति-पौरुष के उसूल की प्रधानता और अधिक स्थापित करने के संघर्ष में सफलता के लिए औपनिवेशिक संस्कृति भारत में भी पुरुषत्व और क्लीवत्व के विपर्यय पर बल दे रही थी। इस प्रकार उपनिवेशवाद ने ब्रिटेन की प्रचलित सेक्शुअल रूढ़ छवियों का इस्तेमाल करके चेतना की उन धाराओं को हाशिये पर धकेलने में मदद की जो इस विपर्यय का विरोध कर रही थीं" [6]।

समलैंगिकता का विरोध करने वाले अकसर यह सवाल उठाते है कि यदि समलैंगिकता स्वीकार्य हो जाएगा तो क्या इस प्रकार के रिश्तों की बाढ़ नहीं आ जाएगी? दरअसल यह समझना ही बेवकूफी है कि समलैंगिकता को स्वीकार करने या मान्यता देने से पूरा समाज ही 'लेस्बियन' या 'गे' हो जायेगा। इसका

फैसला पसंद और सहज आकर्षण की बुनियाद पर टिका है। जहां तक बात यौन-सम्बन्ध की है तो वह कोई किसी से जोर-ज़बरदस्ती बगैर प्रेम और आपसी सहमति के नहीं बना सकता और बगैर सहमति के बना हर रिश्ता यौनिक शोषण के अतिरिक्त कुछ नहीं। अर्धेक आकाश पत्रिका लिखती है- "समलैंगिकता को (या किसी भी अन्य यौनिकता को) अपराध या पागलपन समझना बंद करें। आप दाएं हाथ से लिखते है और दाएं हाथ से लिखने वालो की संख्या अधिक है लेकिन आप जानते है कि बाएं हाथ से लिखने वाले लोग भी होते है, आप उनका हाथ काट तो नहीं देते ठीक इसी प्रकार आप विषमलैंगिक है इसीलिए समलैंगिक व्यक्तियों को दंडित करने का अधिकार आपके पास नहीं है"[7]। कई ऐसे समूह हैं जो समलैंगिकता के मुद्दे को निजी चुनाव के मुद्दे से जोड़ते हैं। दरअसल यह प्रगतिशीलता के पर्दे में छिपा एक प्रकार का होमोफोबिया (समलैंगिक-भीति) है। पितृ समाज को समलैंगिक रिश्ते परहेज नहीं है, क्योंकि वह इनके परिभाषाओं के बाहर हैं। सीमोन स्त्री के संबंध में कहती है कि "स्त्री अपना चुनाव अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं करती, बल्कि पुरुष द्वारा परिभाषित और प्रदत्त जीवन को स्वीकारती है" [8]। चूंकि स्त्री इन परिभाषाओं को स्वीकार कर लेती है इसीलिए वह स्वीकार्य है किन्तु यह समुदाय इन भूमिकाओं और मानकों को स्वीकार नहीं करता और इनमें फिट नहीं बैठता इसलिए वह अस्वीकार्य है। इस अस्वीकृति को और पुख्ता करने के लिए तमाम तरह के मिथक और कहानियाँ गढ़ी जाती रही है। जिसके लिए संस्थाओं का सहारा लिया जाता है।

अगर कोई स्त्री या पुरुष अपने पति या पत्नी और बच्चों के साथ सुखी है और ख़ुशी से अपनी गृहस्थी में आगे बढ़ती/बढ़ता है तो आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है और न ही इसे प्रश्नांकित करने जैसा कुछ है अगर कोई स्वयं को ट्रांसजेंडर मानता है, लेस्बियन मानता है, गे मानता है या कोई और पहचान ही क्यों न मानता हो, तो इसमें भी कुछ आश्चर्य करने जैसा नहीं है । धीरे-धीरे स्थितियाँ बदली है और बदल रही है । अपनी पहचान और अधिकार के लिए LGBTQ जन ने एक लंबी लड़ाई लड़ी। 'गे' और 'लेस्बियन' आंदोलन से शुरू हुआ यह विमर्श LGBTQ विमर्श, क्वीयर विमर्श और अब LGBTQIA+

विमर्श में परिणत हुआ है जो लेस्बियन, गे, बाईसेक्शुअल, ट्रांसजेंडर तथा क्वीयर के साथ-साथ इन्टरसेक्स और एसेक्शुअल एवं अन्य कई पहचानों को समाहित करता है। अब तक जिन बातों का जिक्र खुले जुबां न हो सका, उन्हें खोलना, उन अव्यक्त एहसासों को व्यक्त करना, पितृसत्ता के दबाव तले अनजाने रह गये गोपनीयता को खोलना ही शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

संदर्भ :

[1] . मिल, जॉन स्टुअर्ट, कात्यायनी. (संपा) प्रगति सक्सेना (अनु.) (संस्करण : 2002). स्त्रियों कि पराधीनता, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ. 98

[2] . सांयाल, गौतम, गौरीनाथ (संपा). (2019). एलजीबीटीक्यू-इत्यादि : भाषा का संकट. बया पत्रिका. पृष्ठ. 10

[3] . नंदी, आशिस, अभय कुमार दुबे (अनु.) (संस्करण : 2019). जिगरी दुश्मन, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ. 20

[4] . वही. पृष्ठ. 24

[5] . वही. पृष्ठ. 25

[6] . वही. पृष्ठ. 69

[7] . अर्धेक आकाश (जनवरी 2014). लिंग वैषम्य विरोधी पत्रिका. पृष्ठ. 5

[8] . बोउवार, सीमोन द (नविन संस्करण : 2002). स्त्री:उपेक्षिता, प्रभा खेतान(अनु.), नई दिल्ली : हिन्द पॉकेट बुक्स. पृष्ठ. 72